

orleku le; e fpRr i l knu dh mi; kfxrk % ,d v/; ;u

Mk- ohuk

प्रवक्ता, योग विज्ञान विभाग

पं. ललित मोहन शर्मा परिसर, ऋषिकेश

श्री देव सुमन उत्तराखण्ड विश्वविद्यालय, टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

'kk/k lkj %

जीवन का कोई एक विशिष्ट व स्थायी रूप नहीं हो सकता, क्योंकि यह निरन्तर परिवर्तनशील एवं क्रियाशील रहता है। जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य जगत् के समायोजन से है। बिना बाह्य समायोजन से जीवन का ज्ञान असम्भव है। व्यक्ति के समग्र विकास के लिए एक व्यवस्थित रूप दैहिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा दैविक गुणों का समन्वय है। योग में चित्त के आधार पर जीवन शैली का विभाजन प्राप्त होता है। योगदर्शन में आधुनिक जीवन शैली के परिपेक्ष्य के अर्न्तगत विभिन्न योग प्रणालियों, चित्त का स्वरूप व चित्त प्रसादन को स्पष्ट किया गया है। वही श्रीमद्भगवद्गीता में इसे राजयोग की संज्ञा दी गई है। भगवान् श्री कृष्ण और पतंजलि ऋषि ने योग एवं चित्त प्रसादन के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अष्टांगयोग या राजयोग को प्रमुख मार्ग माना है।

e[; "kcn % जीवन शैली, योग, भारतीय संस्कृति, चित्त प्रसादन।

iLrkouk :

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक इस योग विधा को किसी भी जाति, धर्म, वर्ग एवं सम्प्रदाय आदि के बंधन में बाधा नहीं जा सका और न ही इसे इन बंधनों में बाधा जा सकता है। योग ही वह तत्व है, जो प्राचीन व वर्तमान योगीयों, चिन्तकों, विचारकों, साधकों व दार्शनिकों इत्यादि मुमुक्षु प्राणियों के ज्ञान पिपासा को शांत करता चला आ रहा है। इस योग रूपी नदी में स्नान कर अनेकों साधक व भक्त भक्तिभाव से अपने जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करते आ रहे हैं। आदि काल से लेकर आधुनिक समय तक तथा आने वाले समय में भी मनुष्य के समग्र विकास के लिए दो मार्ग मौजूद होंगे, चाहे वह उन्हें स्वीकार करें अथवा न करें। प्रथम उत्थान आध्यात्मिक और द्वितीय लौकिक भौतिक मार्ग। इन दोनों ही मार्गों के विकास में योग साधना की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। आधुनिक जीवन शैली के परिपेक्ष्य की दृष्टि से योगदर्शन में चित्त प्रसादन का मार्ग सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, जिसकी प्राप्ति हेतु राजयोग या अष्टांगयोग का प्रमुख रूप से वर्णन प्राप्त होता है। राज से तात्पर्य राज वैभव व राजशाही मनोवृत्ति से है। इस राजशाही मनोवृत्ति में यदि अष्टांगयोग जुड़ जाता है, तब वह मानव मात्र के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त करता है। राजयोग का मुख्य लक्ष्य है कि मानव के अन्दर सुषुप्त शक्तियों को जागृत करना।

योगियों तथा मनीषियों ने व्यक्ति समूहों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की पहचान की है। हम अपने जीवन में विभिन्न गतिविधियों के अनुसार जैसे भावना, गतिशीलता, बुद्धि एवं सजगता के रूप में अपने जीवन की अभिव्यक्ति करते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने इन बौद्धिक, भावनात्मक और अर्न्तदर्शी व्यक्तित्व के रूप में पहचाना है। व्यक्ति द्वारा अनुभूत



की गई विशेषताएँ हमारी प्रकृति एवं मस्तिष्क के अनुकूल रूपान्तरित होते हैं, जो हमारे जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक तत्त्व की विशेषता के अभिव्यक्ति का आधार बनता हैं।

योग प्राचीन काल से वर्तमान काल तक मानवीय धर्म, सदाचार व आध्यात्मिकता के रूप में प्रतिष्ठित है। वस्तुतः योग का जन्म तो अति प्राचीन काल में ही हो चुका था। जिसके प्रथम वक्ता हिरण्यगर्भ को ही माना जाता है। तदोपरान्त महर्षि पतंजलि ने योग को सूत्र में पिरोया जिसे योगसूत्र के नाम से जानते हैं। जिसमें 195 सूत्रों में समाहित मानव कल्याण, चित्त प्रसादन व उत्थान के लिए महर्षि ने अष्टांग योग, अभ्यास—वैराग्य व क्रियायोग इत्यादि साधना पद्धतियों का संग्रह प्रदान किया है, जिसके अभ्यास व जीवन में धारण करने से व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव हो सकता है।

योग प्रत्येक जाति, वर्ग एवं सम्प्रदाय विशेष के लिए समान रूप से लाभदायी एवं प्रेरणादायी हैं, इसी कारण से अनन्तकाल से वर्तमान समय तक इसकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। आज मानव जीवन में दैहिक, दैविक व भौतिक सुख की कामना से ग्रसित हो रहा है, जिसकारण वह अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक कार्य को सम्पादि कर अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए तत्पर रहता है। परन्तु वह अपने इस भावना व विचार के ठीक विपरीत यदि करता है, तो पाता है कि प्राचीन जन सामान्य भी इस सुख के लिए प्रयासरत तो अवश्य रहे परन्तु इन सभी से ऊपर भी एक तत्त्व और उनके जीवन का प्रमुख अंग था जो आत्मोत्कर्ष के नाम से जाना जाता है। अस्तु तब का मानव अपने जीवन के परम उद्देश्य के प्रति सचेत व जागरूक था। उसके चिन्तन के मूल में सिर्फ एक ही तत्त्व विद्यमान था कि परमोत्कर्ष कैसे प्राप्त करे। इसके लिए तन्त्र, मन्त्र, पूजा-पाठ, जप, तप, योग, भक्ति, कर्म, ज्ञान, यज्ञ तान्त्रिक योग, वशिष्ठ योग, बौद्धयोग, जैनयोग व हठयोग इत्यादि साधना पद्धतियां भी रही हैं। इन सभी का आकार व प्रकार निश्चित ही अलग था परन्तु इनका उद्देश्य एक ही था, व्यक्ति के चित्त को प्रसन्न कर मोक्ष की प्राप्ति करना।

fpRr i l knu dk egRo %

हमारी देह चुस्त, तन्दुरुस्त रखना चाहिए। देह के प्रति हमारा दृष्टिकोण भिन्न होना चाहिए। यह विषयों के उपयोग का साधन नहीं है, न ही यह घृणित और तिरस्कार करने योग्य मल-मूत्र का भण्डार मात्र है। यह देह प्रमुखतया परमात्मा का मन्दिर है, जिसे स्वच्छ, सुन्दर एवं सबल बनाकर रखना है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि—

ungek | l yHk | n'ku | lyo | dYi | x#d.k/kkjeA

e;kudyu uHkLorfjri iekUHKokfC/k u rjRI vkRegkAA श्रीमद्भागवत् 11.20.17

अर्थात् गुरु रूपी कर्णधार एवं भगवत्कृपा रूपी अनुकूल वायु युक्त देह एक सुलभ व सुदर्शन नौका के समान है। जिससे व्यक्ति इसकी सहायता से संसार सागर को पार कर सकता है, परन्तु जो व्यक्ति पार नहीं करता वह आत्मघाती है। हमें द्रष्टा व दृश्य का विवेक होना चाहिए और यह जान लेना चाहिए कि हमारी भावनाएँ हमारे वास्तविक अहम् या द्रष्टा से भिन्न हैं। हम स्वयं को अपनी भावनाओं से पृथक् करना सीख सकते हैं। उन्हें हमारी वास्तविक आत्मा से पृथक् देखने में समर्थ होने पर हम उन पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं और जीवन की यथार्थताओं का साहसपूर्वक सामना कर मन और उसकी गतिविधियों को नियन्त्रित करने की क्षमता प्राप्त होती है।

मानव का चित्त विभिन्न प्रकार के मलो सेँ लिप्त होता है। इन मलो के अन्तर्गत ईर्ष्या, राग द्वेष, अभिनिवेश, परोपकार, अमर्श आदि सभी विक्षिप्त रूप में चित्त में व्याप्त रहता है। जिनके निवारण हेतु चित्त को निर्मल व शुद्ध बनाकर प्रसादन की आवश्यकता पड़ती है, जो समग्र स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं :



e=hd#.kkfmrk i{kk.kk I:[kn%[k i.;ki.;;fo'k;k.kk Hkkoukrf'pRri:lknu eAA ;kxn'ku& 1-33

1. **e=h Hkko** % मैत्री भावनान्तरगत योगी साधक को चाहिए कि वह सुखी मनुष्य के प्रति मित्रता की भावना रखे। इस भावना अभ्यास से ईष्या वृत्ति की निवृत्ति होती है। जब यह भावना अन्तर्मन में विकसित हो जाती है। तब साधक के हृदय में मित्रता का भाव उदीप्त होकर आन्तरिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है, उसे सांसारिक ऐश्वर्य नगण्य लगने लगते हैं।
2. **d:.kk Hkko** % जिसप्रकार मैत्री भावना से ईष्या से निवृत्ति होती है। उसीप्रकार सांसारिक बाधाओं से व्यथित व दुःखी मनुष्यो पर करुणा की भावना का अभ्यास करने से परोपकर रूपी मल से निवृत्ति प्राप्त होती है।
3. **efmrk Hkko** % मुदिता भावना के अभ्यास मात्र से असूया नामक कालुथ का निरोध होता है अतः तपस्वी, ऋषि, मुनि सन्तों एवं अच्छे लोगो को देखकर मुदिता की भावना का अभ्यास करना चाहिए।
4. **mi{kk Hkko** % उपेक्षा भावना अभ्यास में पापी, अपराधी, दुराचारी व्यक्ति से उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। उन व्यक्तियों पर क्रोध न करके बल्कि यह भाव रखे कि यह मानव स्वयं ही धर्म के मार्ग से पतित होकर अधर्म मार्ग में प्रवृत्त है। अतएव इससे विचलित न होकर ऐसे लोगो के प्रति उपेक्षा की भावना का अभ्यास करना चाहिए। जिससे कालुश्य का उपनयन होता है।

अतः मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा इत्यादि के अभ्यास मात्र से चित्त में प्रसादन व प्रसन्नता की स्थिति उत्पन्न होती है। यह चित्त प्रसन्नता ही व्यक्तित्व विकास में सहायक है। इसी निमित्त ही पतंजलि का योग साधना व अभ्यास मार्ग अपने उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ आभाषित होता है। महर्षि पतंजलि ने जीव के सर्वांगीण विकास के लिए मन को एकाग्र करने के लिए उत्तम योग मार्ग प्रशस्त किया है। जिसके अन्तर्गत योग की विभिन्न साधनाएं आती हैं। जब चित्त इतनी सक्षम हो कि आत्मा का साक्षात्कार होकर आत्मा का विलय परमात्मा में सम्पादित हो सके, योग की यही उच्चावस्था कैवल्य है। जिस प्रक्रिया व साधना का निरूपण महर्षि पतंजलि ने किया है।

fpRr i:lknu e egf'k i r t f y d h ;kx lk/kuk #ih mik; %

महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन में आधुनिक जीवन शैली को श्रेष्ठ बनाने हेतु चित्त प्रसादन रूपी योगसाधना विषयक अनुशासन को चार प्रमुख पाद समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद में विभक्त किया, जिनमें क्रमशः 51, 55, 55, 34 सूत्रों की व्याख्या है। महर्षि ने व्यक्ति के समग्र विकास के लिए चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है।

महर्षि ने अष्टांगयोग की इस साधना को निम्न प्रवृत्ति के साधक के लिए बताया है अर्थात् जो साधक अभी नया है उसके लिए यह साधना है। महर्षि ने इसे व्यावहारिक व वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है। जिसमें बहिरंग योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा, ध्यान एवं समाधि को अन्तरंग योग के नाम से जाना जाता है। बहिरंग योग को साधने के पश्चात् अंतरंग योग की प्राप्ति संभव होती है। महर्षि पतंजलि ने धारणा, ध्यान, समाधि तीनों के एकीकरण को संयम के नाम से विभूति पाद में विभूषित किया है। यही महर्षि पतंजलि का संयम योग है। जीवन की सभी समस्याओं की गुन्थियों को सुलझाने एवं चित्त प्रसादन के लिए अष्टांग योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

साधना की विभिन्न पद्धतियों में अष्टांगयोग सार्वभौमिक, सार्वदेशित, सार्वकालिक, प्रामाणिक व वैज्ञानिक माना जाता है, जिसके आठ अंग निम्न हैं –



- 1- ;e : का अर्थ है संयम। यह पाँच हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।
- 2- fu;e : भी पाँच हैं– शौच–आन्तरिक और वाह्य शुद्धि, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान।
- 3- vklu : स्थिरता और सुखपूर्वक एक ही स्थिति में बहुत देर तक बैठने का नाम आसन है। ध्यान के लिए सिद्ध, पद्म, सुख, स्वास्तिक आदि अनेक आसन हैं।
- 4- ik,kk;ke : श्वास–प्रश्वास की गति के विच्छेद का नाम अर्थात् श्वास–प्रश्वास की गति के सामान्य प्रवाह को रोककर विशेष गति में आने का नाम प्राणायाम है।
- 5- iR;kgkj : इन्द्रियों को रूप, रस आदि अपने–अपने विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी करने का नाम प्रत्याहार है।
- 6- /kj.kk : चित्त को नाभिचक्र, आज्ञाचक्र आदि किसी स्थान में स्थिर कर देना धरणा है।
- 7- /;ku : किसी स्थान में ध्येय वस्तु का ज्ञान जब तेलधरावत् एक प्रवाह में संलग्न होता है, तब उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान में ध्यान, ध्येय और ध्याता का पृथक–पृथक भान होता है।
- 8- lekfk : जब ध्यान ही ध्येय के आकार में भासित हो और अपने स्वरूप को छोड़ दे तो वही समाधि है। समाधि में ध्यान और ध्याता का भान नहीं होता, केवल ध्येय रहता है।

भारतीय दर्शन में योग आधारभूत तत्त्व है। योग सहित समस्त भारतीय दर्शन कि विचारधारा व चिन्तन का एक मात्र उद्देश्य दुःख निरोध के अनन्त विचारों पर केन्द्रित है। योगदर्शन चतुर्व्यह के निवारन के साथ इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण को अपना प्रयोजन स्वीकार किया है। योग हिरण्यगर्भ व पतंजलि द्वारा संकलित किया गया है। महर्षि ने योग की साधना पद्धतियों को उनके योग अधिकारियों द्वारा उपासित करने हेतु वर्णित किया है, जो योग का सरलतम स्वरूप है। इस हेतु अभ्यास – वैराग्य, क्रिया योग, अष्टांगयोग का दृष्टान्त भी सन्निहित है।

महर्षि की साधना पद्धति तो निश्चित ही उत्तम कोटि की है, जिसमें कोई संशय नहीं है। इनके अतिरिक्त इन साधनाओं द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाले अनेक योगी हुए हैं जैसे कि आधुनिक योगी स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, श्री अरविन्द इत्यादि हैं। इनका व्यक्तित्व व कृतित्व भी योगमय था परन्तु इनकी योग साधना पद्धति पतंजलि की साधना से अलग है। योग साधना की पद्धति चाहे जो भी हो परन्तु लक्ष्य तो एक ही होता है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसेकि भोजन का प्रकार चाहे जो भी हो लक्ष्य तो क्षुधा शान्त करना ही होता है। उसी प्रकार साधना चाहे जो भी हो उसका लक्ष्य एक ही है।

mi lgkj

मानव के अन्दर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कुछ विशेष गुण होते हैं। यही गुण उसे दूसरे मानव से अलग करते हैं। लेकिन कई कारणों से हर व्यक्ति अपने गुणों को प्रदर्शित नहीं कर पाता, जिससे वह समाज में वन्धित रह जाता है। जैसे सोने के अन्दर चमक होना स्वभाविक गुण है, लेकिन जब तक सोने को तपाया नहीं जाता, तब तक उसमें चमक नहीं आती उसी प्रकार व्यक्ति चित्त प्रसादन के प्रत्येक पक्ष को अपने जीवन में अवतरित करके ही व्यक्ति अपने जीवन को परिष्कृत करता है। वर्तमान समय के ऋषि, मुनि, योग साधक का जीवन प्रायः एक–दूसरे से अलग कर देता है। क्योंकि जितना हम योग के विभिन्न पक्षों का अपने जीवन में साधना करते हैं, हमारा आभामण्डल उतना ही तेज हो जाता है।

वर्तमान समय में भी ऐसे कई ऋषि–मुनि हुए जिन्होंने योग के किसी एक पक्ष को अपने जीवन में अवतरित कर लिया तो संसार उनका अनुयायी हो गया। जैसे महात्मा गाँधी ने केवल अहिंसा को अपने जीवन का मूल आधार बना लिया तो आज



वर्तमान् परिप्रेक्ष्य में उनके जन्म दिवस को अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जाता है। वर्तमान् समय में समस्त संसार को लगने लगा है कि संसार की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से व्याप्त व्यक्तिगत समस्या का एक मात्र निदान योग है। वर्तमान् एवं भविष्य में मानव कल्याण हेतु सहयोगी होगा, व्यक्ति के जीवन में अन्तरंग और बहिरंग स्तर पर उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने में यह सहायक सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का कथन है कि हम बदलेंगे, युग बदलेगा, हम सुधरेंगे, युग सुधरेगा। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है। अतः जो मनुष्य इसे अपने जीवन में अपनाएगा उसके जीवन में अवश्य ही परिवर्तन एवं बहुगुणी प्रतिभा का विकास होकर वह सुखी व समृद्ध बनेगा। पुनः हमारे राष्ट्र में राम, कृष्ण, बुद्ध जैसे महापुरुष उत्पन्न होंगे एवं भारत विश्व गुरु बनेगा।

॥ Unhki xUFk I ph ॥

1. गौर मकरन्द मधुकर, शरीर विज्ञान और योगाभ्यास, प्रकाशक सौ. भारती गोर कांचन प्रकाशन कैवल्यधाम, लोनावाला
2. सरस्वती स्वामी सत्यानन्द, आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
3. यादव कैलास प्रसाद, 1997, जीवन और उपदेश, पश्चिमी टोला, भागलपुर-3, बिहार
4. आचार्य पं. श्री राम शर्मा, वांगमय, खण्ड-65, समाजिक नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथरा
5. शिवानन्द श्री स्वामी, योगासन प्रकाशक दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द नगर टिहरी, गढ़वाल
6. सरस्वती स्वामी निरन्जनानन्द, योग दर्शन, प्रकाशक योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
7. अरविन्द श्री, 2003, योग समन्वय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी
8. रवीन्द्र, 1994, लाल कमल, श्री अरविन्द सोसाइटी, पांडिचेरी
9. विज्ञानानन्द स्वामी, सरस्वती हठयोग विधा, प्रकाशक योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती ऋषिकेश
10. श्रीवास्तव सुरेन्द्र चन्द्र, पतंजलि योगदर्शनम् प्रकाशक, चौखम्बा सुर भारती, वाराणसी

